17

देवनागरी लिपि और उसका वैज्ञानिक महत्त्व

भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से संस्कृत भाषा को गीर्वाणभाषा/देवभाषा कही जाती है और इस भाषा व भारतीय संस्कृति की कई भाषाओं की लिपि देवनागरी है । भाषा व लिपि दोनों भिन्न भिन्न चीजें हैं । ध्वनिशास्त्र में दोनों का विशेष महत्त्व है ।

भारतवर्ष की कुछ भाषाओं की लिपि देवनागरी है । उसमें हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी, इत्यादि भाषाओं का समावेश होता है । देवनागरी लिपियुक्त भाषाएँ व उसीके वर्ग में आनेवाली अन्य भाषाओं की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसी भाषा के शब्द या वाक्य इत्यादि के उच्चारण उस-उस शब्द या वाक्य में प्रयुक्त स्वर-व्यंजन के अनुसार ही होते हैं । अर्थात् उस भाषाओं में जैसे बोला जाता है वैसे ही लिखा जाता है और जैसे लिखा जाता है वैसे बोला भी जाता है । वाक्य या शब्द में लिखा गया एक भी अक्षर - स्वर या व्यंजन अनुच्चरित (silent) नहीं रहता है ।[1] हालाँकि प्राचीन काल में वेद वाक्य में प्रयुक्त स्वर का उच्चारण भी विशिष्ट पद्धति से किया जाता था । अतः उस स्वर के स्वरभार को बताने के लिये उसके ऊपर विशिष्ट चिह्न भी रखे जाते थे और उसका उच्चारण आवश्यक रूप से उन चिह्नों के अनुसार ही किया जाता था। उसका वैज्ञानिक कारण था ।[2]

देवनागरी लिपि के स्वर-व्यंजन की योजना व उसके उच्चारण पूर्णतः वैज्ञानिक है ऐसा आधुनिक विज्ञान के अनुसंधानों ने बताया है । देवनागरी लिपि में स्वर की संख्या चौदह बतायी है । अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ । अं और अः में निर्दिष्ट ं और ः स्वर नहीं हैं किन्तु उन दोनों का स्वतंत्र उच्चारण असंभव होने से उसके पूर्व में अ रखा गया है । अतः प्राचीन काल के सभी वैयाकरणों ने उनको स्वर के साथ स्थान दिया है । मंत्रशास्त्र में उसका विशेष महत्त्व होने से मंत्रशास्त्रकारों ने सोलह स्वर माने हैं । पाणिनीय परंपरा में दीर्घ ॠ और दीर्घ ॡ नहीं बताये है क्योंकि उनका प्रयोग ज्यादा नहीं होता है । जबकि *सिद्धहेमशब्दानुशासन*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(संस्कृत व्याकरण) के कर्ता कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी ने दीर्घ ॠ और दीर्घ ॡ दोनों का निर्देश किया है । इनके संबंधित नियम भी बताये हैं। देवनागरी लिपि के व्यंजन की व्यवस्था प्राचीन काल से इस प्रकार चली आती है ।[5]

क, ख, ग, घ, ङ - कवर्ग - कंठ्य, च, छ, ज, झ, ञ-चवर्ग- तालव्य,
ट, ठ, ड, ढ, ण - टवर्ग - मूर्धन्य त, थ, द, ध, न - तवर्ग - दंत्य,
प, फ, ब, भ, म - पवर्ग - ओष्ठ्य, य, व, र, ल - उष्माक्षर
श - तालव्य, ष - मूर्धन्य, स - दंत्य, ह - महाप्राण,
क्ष = क् + ष, ज्ञ = ज् + ञ व - दंत्यौष्ठ्य

क वर्ग के सभी व्यंजनों का उत्पत्ति स्थान कंठ होने से उन्हें कंठस्थ कहा जाता है । जबकि चवर्ग के व्यंजन का उच्चारण करते समय जिह्वा व तालु का संयोग होता है अतः उन्हें तालव्य अर्थात् तासु द्वारा निष्पन्न कहा जाता है । टवर्ग के व्यंजन की असर मूर्धन् अर्थात् मस्तिष्क तक पहुँचती है या उसका उत्पत्ति स्थान मस्तिष्क है, अतः उसे मूर्धन्य कहा जाता है । तो तवर्ग के व्यंजन का उच्चारण करते समय जीभ ऊपर व नीचे दोनों ओर दांत को स्पर्श करती है अतः उन्हें दन्त्य कहा जाता है । पवर्ग के व्यंजन के उच्चारण करते वख्त दोनों ओष्ठ इक्कट्ठे होते हैं अतः उन्हें ओष्ठ्य व्यंजन कहा जाता है ।[6]

कहा जाता है कि साढे तीन सौ वर्ष पूर्व महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज ने काशी के किसी विद्वान के साथ पवर्ग के एक भी व्यंजन और व के उपयोग किये बिना बहुत लम्बे समय तक शास्त्रार्थ किया था । और ओष्ठ्य व्यंजन का उपयोग नहीं हुआ है, उसका निर्णय करने के लिये ऊपर के एक ओष्ठ को लाल रंग का हरताल लगा दिया था । यदि पवर्ग के व्यंजन का प्रयोग हो जाय तो ऊपर के ओष्ठ का रंग नीचेवाले ओष्ठ को लग जाय किन्तु उपाध्यायजी महाराज ने ऐसी कड़ी शर्त का बराबर पालन किया।

ऊपर बताया उसी प्रकार य, व, र, ल श, ष, स, ह के सभी निश्चित उच्चारण स्थान बताये हैं । ह को महाप्राण कहा है क्योंकि उसका उच्चारण नाभि व वक्षस्थल से होता है । देवनागरी लिपि के अन्त में क्ष और ज्ञ बताये हैं । किन्तु ये दो स्वतंत्र अक्षर नहीं हैं, किन्तु वे दो दो व्यंजन के संयोजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से निष्पन्न हैं । यहाँ इतना याद रखना कि आधुनिक विज्ञान ने हाल ही में ई. स. 1807 में ही ध्वनिशास्त्र (acoustics) की शोध की है उससे हजारों साल पहले यही वर्णमाला व उसका विश्लेषण प्राचीन भारतीय साहित्य में चला आ रहा है । और संस्कृत व्याकरण के अध्येता उसका अध्ययन करते थे और आज भी कर रहे हैं । जब पश्चिम में उस समय किसी भी प्रकार के विज्ञान का जन्म भी नहीं हुआ था । ईसा की सत्रहवीं सदी में हुए अर्नस्ट च्लेन्डी (Ernst Chlandi) नामक जर्मन विज्ञानी व निष्णात संगीतकार को ध्वनिशास्त्र का पिता माना गया है ।[7]

देवनागरी लिपि जिसमें प्राचीन काल से संस्कृत भाषा द्वारा अपने विचार व भावनाएँ अभिव्यक्त की जाती थीं और उसके लिये वह महत्त्वपूर्ण माध्यम थी । इसी लिपि के स्वर-व्यंजन के आकार भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । प्राचीन काल के दिव्यज्ञानवाले महापुरुषों ने इन्हीं स्वर-व्यंजन के आकार को अपने विशिष्ट ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन / साक्षात्कार किया था । बाद में उन्हीं अक्षरों के आकार को लिपिबद्ध किया था । अर्थात् उच्चरित स्वर-व्यंजन के ध्वनि की आकृति दी गई ।

आज हजारों वर्ष बाद भी इन्हीं स्वर-व्यंजन के आकार लिपि में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है । इतना ही नहीं ई. स. 1967 में स्विस डॉक्टर स्व. हेन्स जेनी नामक आर्टिस्ट व विज्ञानी संशोधक ने खास तौर से बताया कि जब भी हिब्रु व संस्कृत (प्राकृत व अर्धमागधी) जैसी प्राचीन भाषा के स्वर-व्यंजन का उच्चारण किया जाता है तब उसके सामने स्थित रेत में उसी स्वर-व्यंजन की आकृति हो जाती है । जबकि हमारी वर्तमान भाषाओं के उच्चारण के दौरान ऐसा परिणाम नहीं मिलता है ।[8]

इसके बारे में प्रश्न उपस्थित करते हुए हेन्स जेनी कहते हैं : *यह कैसे संभव है ? क्या भारतीय व हिब्रु भाषा के निष्णातों को इस बात की समझ थी ? यदि ऐसी समझ हो तो यह महान आश्चर्य है । क्या पवित्र भाषाओं के बारे में उनका कोई विशिष्ट या निश्चित ख्याल/विचारधारा होगी ? और इन पवित्र भाषाओं के लक्षण क्या थे ? क्या इन भाषाओं में भौतिक पदार्थों में परिवर्तन करने का या उस पर असर पैदा करने का सामर्थ्य था ? या क्या इन भाषाओं के मंत्र की शक्ति द्वारा भौतिक पदार्थ उत्पन्न किये जा सकते हैं? या क्या किसी भी व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक रोगों की चिकित्सा*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन पवित्र मंत्रों के गान/गीत-संगीत द्वारा की जा सकती है ? क्या दंतकथा स्वरूप पिरामिड के चमत्कारिक प्रभाव जैसा असर इन पवित्र सुर-स्वर द्वारा पैदा किया जा सकता है ?"[9]

यहाँ ध्यान में रखा जाय कि भारतीय भाषाओं की लिपि व ध्वनि/उच्चारण के बारे में ये प्रश्न किसी भारतीय या फ़ालतू व्यक्ति के नहीं हैं किन्तु ई. स. 1957 से इसी क्षेत्र में अनुसंधान करने वाले स्विस डॉक्टर स्व. हेन्स जेनी के हैं ।

प्रसंग के अनुसार दूसरी एक बात खास तौर से ध्यान में रखने योग्य है कि वि. सं. 1199 के दौरान गुजरात की अस्मिता के पुरोधा कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी ने श्री सिद्धहेमशब्दानुशासन नामक एक व्याकरण की रचना की है । इस व्याकरण में प्रथम सात अध्याय/विभाग में संस्कृत भाषा का व्याकरण बताया गया है किन्तु इसके आठवें अध्याय में प्राकृत आदि छः भाषाओं का व्याकरण भी बताया गया है । वे इस प्रकार हैं- 1. प्राकृत, 2. अर्धमागधी, 3. शौरसेनी, 4. पैशाची, 5. चूलिका पैशाची, 6. अपभ्रंश ।[10] इसमें पैशाची भाषा के लिये कहा जाता है कि प्राचीन काल से इस भाषा में प्रेतयोनि के जीव व्यवहार करते हैं । अतः प्रेतयोनि के जीव को वश करने के मंत्र इसी भाषा में होते हैं । जिनके अर्थ उसी मंत्र के साधकों को भी मालुम नहीं होता है ।

प्राचीन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन परंपरा के साहित्य में नवस्मरण नाम से प्रसिद्ध स्तोत्र संगीत-चिकित्सा व मंत्र-चिकित्सा के अमूल्य साधन हैं । हाल ही में इन्टरनेट से प्राप्त जानकारी के अनुसार फबिएन ममन (Fabien Maman) नामक संशोधक ने बताया है कि संगीत के सुर में C, D, E, F, G, A, B, C' व D' सुर के क्रम से प्रायः 14 -14 मिनिट तक सतत संगीतमय उच्चारण करने पर कैन्सर की कोशिकाओं का नाश होता है ऐसा प्रायोगिक परिणाम में देखा गया है । इतना ही नहीं सूक्ष्मदर्शकयंत्र (Microscope) में रखे गये कैन्सर की कोशिका की स्लाइड में कैन्सर की कोशिकाओं का नाश प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है । और उसके फोटोग्राफ्स भी लिये गये हैं । वे इनसे संबंधित वेबसाईट में रखे गये हैं ।[11]

पिछले कुछ वर्षों में हमारे पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विजयसूर्योदयसूरिजी महाराज के अनुभव में ऊपर बताये हुए नवस्मरण स्तोत्र के अन्तर्गत तीसरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री संतिकरं स्तोत्र का अद्भुत प्रभाव देखने को मिला है । श्री साराभाई मणिलाल नवाब द्वारा प्रकाशित " *महाप्रभाविक नवस्मरण* " ग्रंथ में एक संतिकरं कल्प है । उसके अनुसार विधि करने पर उसका अनुभव हो सकता है ।[12]

इस संतिकरं स्तोत्र की रचना श्री मुनिसुंदरसूरिजी महाराज नामक जैनाचार्य ने की है । इस स्तोत्र में श्रीशांतिनाथ परमात्मा की स्तुति की गई है । जैन परंपरा के अनुसार इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में हुए चौबीस तीर्थंकरों में से श्री शांतिनाथ सोलहवें तीर्थंकर हैं । कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी के त्रिष्टिशलाकापुरुष चरित्र के अनुसार श्री शांतिनाथ प्रभु उनकी माता श्रीअचिरादेवी के गर्भ में थे उस वख्त हस्तिनापुर नगर में किसी भी कारण से मरकी-महामारी भारी उपद्रव हुआ था । उस समय ज्ञानी गुरु भगवंत की सूचना अनुसार श्री अचिरा माता के स्नात्र-अभिषेक के जल का समग्र नगर में छंटकाव किया गया और उससे समग्र नगर में से रोग दूर हो गया था ।[13] प्रथम दृष्टि से आज के विज्ञान युग में यह असंभव - अशक्य माना जाय किन्तु तटस्थ अनुसंधान की दृष्टि से इस घटना का मूल्यांकन किया जाय तो इसमें कोई आश्चर्यजनक नहीं है ।

इस स्तोत्र के रचयिता आचार्य श्री मुनिसुंदरसूरिजी महाराज भी मंत्रशास्त्र के महान ज्ञाता व सत्त्वशाली महापुरुष थे ।

उन्होंने सूरिमंत्र की संपूर्ण आराधना विधिपूर्वक 24 बार की थी । जो सामान्यतः कोई भी आचार्य केवल एक या दो बार करते हैं ।

इस स्तोत्र के विधिपूर्वक जाप से कैन्सर जैसे महाव्याधि मे उसकी गांठें अदृश्य हो पायी हैं ।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किसी भी संगीत के साधन द्वारा उत्पन्न संगीत के सुरों के बजाय संगीतकार द्वारा ही अपने मुख से जो सुर उत्पन्न किया जाता है वह ज्यादा शक्तिशाली होता है और वह दर्दी पर ज्यादा असर पैदा करता है । यह बात वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा स्पष्ट होती है ।[14] जो तार्किक रीत से भी संपूर्ण सत्य है क्योंकि संगीत के साधन द्वारा उत्पन्न सुरों में एक ही प्रकार के सुर में भिन्न भिन्न बहुत से प्रकार के अक्षर, शब्द की ध्वनि समाविष्ट हो जाती है । जबकि संगीतकार मनुष्य द्वारा मुख से ही जिस सुर का उच्चारण किया जाता है उस वख्त वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवल एक ही प्रकार के अक्षरों या शब्दों की ध्वनि होती है । अतः वह ज्यादा घन - तीव्र बनता है, परिणामतः संगीत के साधन के ध्वनि से उसका ज्यादा व स्पष्ट असर होता है ।

सामान्यतः आधुनिक औषधविज्ञान में जिस कैन्सर के व्याधि को असाध्य माना गया है, वह संगीत के सुरों द्वारा व मंत्र चिकित्सा द्वारा दूर हो सकता है ऐसा पश्चिम में किये गये अनुसंधान से पता चलता है ।

मंत्रशास्त्र के वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये हाल ही में अमरिका में बनाया गया टोनोस्कॉप नामक यंत्र बहुत ही उपयोगी है । इस यंत्र की महत्ता बताते हुए उसके अनुसंधानकार हेन्स जेनी कहते हैं कि दूसरे कोई भी प्रकार के इलेक्ट्रोनिक साधन की बिना सहायता ही टोनोस्कॉप नामक यह यंत्र मनुष्य की आवाज का दृश्य में रूपांतर करता है । और इसी साधन की सहायता से भाषागत कोई भी स्वर या व्यंजन के तथा संगीत के विभिन्न सुरों को सीधे ही भौतिक आकृति में दृश्यमान बनाकर आगे का अनुसंधान करने की संभावनाओं का निर्माण हुआ है ।[15]

हमारी भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था (Research Institute of Scientific Secrets from Indian Oriental Scriptures), अहमदाबाद हाल ही में कार्यान्वित हुई है । वह निकट के भविष्य में इसी यंत्र के द्वारा स्व. हेन्स जेनी द्वारा उपस्थित किये गये प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करेगी तथा यंत्र, मंत्र, तंत्र के बारे में विशिष्ट प्रायोगिक अनुसंधान कार्य शुरु करेगी ।

संक्षेप में, संस्कृत भाषा एक ऐसी विशिष्ट भाषा है कि जो पूर्णतः वैज्ञानिक है । इतना ही नहीं, किन्तु प्राचीन काल के ऋषि मुनिओं को इसके बारे में जितना ज्ञान था उसका अंश मात्र भी वर्तमान लोगों के पास नहीं है । उस ज्ञान को प्राप्त करने हेतु इस संस्था द्वारा अनुसंधान किया जायेगा ।

संदर्भ :

1. जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो ले. मुनि श्री नंदीघोषविजयजी (प्र. भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था जनवरी 2000) पृ. 91

2. द्रष्टव्य : पाणिनीय अष्टाध्यायी (संस्कृत व्याकरण)

3. सिद्धहेमशब्दानुशासन सूत्र - औदन्ताः स्वराः । 1 - 1 - 4, अं अः अनुस्वारविसर्गौ। 1 - 1 - 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4. सिद्धहेमशब्दानुशासन सूत्र - औदन्ताः स्वराः । 1 - 1 - 4. एक-द्वि-त्रिमात्रा ह्रस्व-दीर्घ-प्लुताः 1 - 1 - 5 । अनवर्णा नामी 1 - 1 - 6 । लृदन्ताः समानाः 1 - 1 - 7 । अं अः अनुस्वारविसर्गौ । 1 - 1 - 9

5. सिद्धहेमशब्दानुशासन सूत्र - कादिर्व्यंजनम् । 1 - 1 - 6

6. सिद्धहेमशब्दानुशासन सूत्र तुल्यस्थानास्यप्रयत्नः स्वः । 1 - 1 - 17 और उसकी वृत्ति ।

7. Ernst Chlandi who has been referred to as the father of acoustics

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

8. In his research with tonoscope, Jenny noticed that when vowels of the ancient languages of Hebrew and Sanskrit were pronounced, the sand took the shape of the written symbols of these vowels, while our modern languages, on the other hand did not generate the same result.

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

9. Jenny questioned how this was possible. Did the ancient Hebrews and Indians understand what seemed a mystery to us? Is there something to the concept of "Sacred Languages"? What qualities of these "Sacred Languages" possess? Do they have the power to influence and transform physical reality, to create things through their inherent power, or, to take a concrete example, through the recitation or singing of sacred text, to heal a person who has gone "out of tune"? Were these "sacred tones" used to create such miracles as the pyramids?

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

10. द्रष्टव्य : सिद्धहेमशब्दानुशासन, आठवाँ अध्याय, चौथा पाद

11. The most dramatic influence on the cells (as shown in the actual photographs above) came from the human voice when Maman sang a series of scales into the cells. Over a period of fourteen minutes the nine musical notes (C - D - E - F - G - A - B - and C and D from next octave above) were sung. The structure quickly disorganized.

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

12. महाप्रभाविक नव स्मरण (प्रकाशकः साराभाई मणिलाल नवाब, अमदावाद)

13. द्रष्टव्य : त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र गत श्री शांतिनाथ चरित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(कर्ताः कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यजी)

14. The human voice carries something in its vibrations that makes it more powerful than any musical instrument.

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

15. The tonoscope was able to make the human voice visible without any electronic apparatus as an intermediate link. This made possible an ability to view the physical image of a vowel, a tone that a human being produced directly. Thus, Jenny could not only hear a melody - they could see it, too !

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

When all in the world understand beauty to be beautiful, then ugliness exists; when all understand goodness to be good, then evil exists.

But Aristotle himself believed that questions concerning the human soul and the contemplation or God's perfection were much more valuable than investigations of the material world.

Fritjof Capra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org